हिन्दी उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व
(विशेष संदर्भ : 21वीं सदी के उपन्यास)

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ से हिन्दी साहित्य विषय में
पीएच०डी० की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध–सारांशिका

BABASAHEB
BHIMRAO
AMBEDKAR
UNIVERSITY
•LUCKNOW•
प्रज्ञा शील करूणा
ESTABLISHED 1996

Abhishek Kumar
शोधार्थी
अभिषेक कुमार
नामाकंन संख्याः 628/18

शिवशंकर यादव
शोध निर्देशक
डॉ0 शिवशंकर यादव
सहायक आचार्य

हिन्दी विभाग
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय) (NAAC : A++ ACCREDITATION)
विद्या विहार, रायबरेली रोड
लखनऊ–226025 (उ0प्र0)

2024

शोध–सारांशिका

साहित्य की समस्त विधाओं में अपने मनोभाव, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक यथार्थ एवं आदर्श तथा जीवन के समस्त पक्षों को व्यक्त करने में उपन्यास सबसे समर्थ और सशक्त विधा है। इससे जीवन के सभी पक्षों चाहे वह किसी पात्र या स्वयं लेखक का गौर पक्ष हो या फिर स्याह पक्ष हो इसे बहुत ही तल्लीनता से दर्शाया जा सकता है। इसका प्रमुख कारण उपन्यास विधा का अन्य सभी विधाओं से काया में भारी–भरकम होना तथा रचनाकार की रचनाधर्मिता के लिए पर्याप्त अवसर होना है। इसके शाब्दिक अर्थ में ही जीवन के 'सबसे निकट' होना विद्यमान है।

उपन्यास अपने आरम्भ से ही समाज तथा लेखक के मन के द्वंद्व को दर्शाती है। लेखक का यही द्वंद्व जब समाज से दो–दो हाथ करता है तब उपन्यास का जन्म होता है। उपन्यास अपने सहज भाव में आदर्शवादी तथा यथार्थवादी दोनों होता है। लगभग हर उपन्यास में कुछ पात्र आदर्शवादी कुछ पात्र यथार्थवादी होते हैं तथा हर काल विशेष एक निश्चित समय में किसी न किसी वाद से प्रभावित होता है। कुछ ऐसे पात्र होते हैं जो उसे अपने समय में ही कुछ सामाजिक व सांस्कृतिक सीमाओं के कारण अपने आपको समाज के साथ ढाल लेते हैं तथा कुछ पात्र अपने समय, समाज तथा संस्कृति की सीमाओं को तोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। इन्हीं पात्रों के द्वंद्व एवं संघर्ष से उपन्यास का विकास होता है। प्रेमचंद के पूर्व उपन्यास का स्वभाव आदर्शवादी था। इस समय के उपन्यासों में उपदेशवादिता तथा सुखांतता की अधिकता थी। प्रेमचंदयुगीन उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से प्रभावित थे। इसकी अगुवाई स्वयं प्रेमचंद कर रहे थे। प्रेमचंदोत्तर उपन्यास का झुकाव यथार्थवाद की तरफ मुड़ा हुआ था जो अबतक चला आ रहा है।

21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास अपने दशा, दिशा और विषय में 20वीं सदी से काफी भिन्न और आगे चलते दिखाई देते हैं। इसमें बाजारवादी व्यवस्था, भूमण्डलीकरण एवं उपभोक्तावाद का प्रभाव भी दिखता है और साथ ही अस्मितावादी

आंदोलनों की सकारात्मक भरमार भी दिखाई देती है। 21वीं सदी के उपन्यासों के सी विषय विभिन्नता तथा पात्रों के आदर्श और यथार्थ के द्वंद्व एवं संघर्ष को दर्शाने के लिए इस शोध विषय का चयन किया गया है। इसका शीर्षक हिन्दी उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व (विशेष संदर्भ : 21वीं सदी के उपन्यास) हैं। इसे पाँच अध्यायों में विभक्त करके शोध कार्य को पूर्ण किया गया है।

प्रथम अध्याय–

प्रथम अध्याय जिसका शीर्षक **आदर्शवाद और यथार्थवाद की संकल्पना एवं स्वरूप** है, इसके अंतर्गत आदर्शवाद और यथार्थवाद की अवधारणा को गहनता से समझने का प्रयास किया गया है। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम आदर्शवाद की संकल्पना उसके अर्थ, उद्‌भव एवं विकास पर बात की गई है। आदर्शवाद सम्बन्धी प्रमुख भारतीय विद्वानों में शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे बाजपेयी, प्रेमचंद आदि विचारक है।

आदर्शवाद के लिए अंग्रेजी में IDEALISM शब्द का प्रयोग किया गया है। आदर्शवाद कोई आंदोलन नहीं जिसके उद्‌भव तथा विकास को किसी समय सीमा में बांधा जा सके। अपितु यह मनुष्य के विकास के साथ ही प्राचीन काल से चली आ रही चिंतन की एक प्रक्रिया है। आदर्शवाद उन विचारों एवं मान्यताओं को विचारधारा के रूप में निरूपित करता है जिनके अनुसार इस संसार के समस्त प्राणी या वस्तु एक विचार या चेतना की अभिव्यक्ति है। आदर्शवाद के सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रयोग प्लेटो द्वारा आदर्श राज्य की स्थापना के लिए किया गया। जिसके अनुसार दृश्य जगत सत्य नहीं अपितु मिथ्या है यह विचार जगत या मानसिक जगत की छाया मात्र है। अतः यह वास्तविक नहीं है। आदर्श या विचार ही सत्य है।

भारतीय विद्वानों में प्रेमचन्द सहित अन्य हिन्दी साहित्य के विद्वान आदर्शवाद को एक सुसज्जित सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जो समाज में बढ़ रही कुंठाओं, अपसंस्कृतियों के प्रभावों को दमित कर एक आदर्शवादी समाज की संकल्पना में सहायक होता है।

कला और साहित्य के क्षेत्र में एक आंदोलन के रूप में यथार्थवाद उन्नीसवीं सदी में फ्रांस में उभरा। अपने शाब्दिक बनावट में यथार्थवाद 'यथा+अर्थ' अर्थात् जो जैसा है उसे उसी रूप में स्वीकार करना है। अंग्रेजी में इसके लिए REALISM' शब्द का प्रयोग किया गया है। यथार्थवाद मूलतः चित्रकला में आया जिसे साहित्य में भी उसी अर्थ में ग्रहण किया गया। वस्तुतः यथार्थवाद का अर्थ वह विश्वास या सिद्धान्त है जो जगत को उसी रूप में स्वीकार करता है जिस रूप में वह हमें दिखाई देता है। यथार्थवादी विचारधारा के उदय की पृष्ठभूमि में कई सामाजिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं आर्थिक क्रांतियाँ विद्यमान है। जिसके प्रमुख विचारक कुर्वे, जॉन लॉक, फ्लाउवेयर, जॉर्ज लुकाच आदि हैं।

भारतीय विद्वानों में जयशंकर प्रसाद यथार्थवाद को जीवन के दुख के भावों का उल्लेख मानते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तु जगत से जोड़ते हैं। शिवदान सिंह चौहान इसे जीवन की वास्तविकताओं के प्रतिबिम्ब के रूप में स्वीकार करते हैं तथा प्रेमचन्द यथार्थवाद को चरित्रगत दुर्बलताओं, क्रूरताओं और विषमताओं का नग्न चित्र मानते हैं। यथार्थवादी कलाकार का प्रयत्न हमेशा उन घटनाओं का प्रस्तुतीकरण करना होता है जो वास्तविक जगत की प्रतिछाया हो। यथार्थवाद के स्वभाव के अनुसार इसे कई भागों में विभक्त किया गया है– सामाजिक यथार्थवाद, प्राकृतिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, जादुई यथार्थवाद, अति यथार्थवाद इत्यादि है। जो अपनी प्रकृति के अनुसार एक दूसरे के सहवर्ती होकर चलते हैं।

शैली के रूप में यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनों का उपयोग कला एवं साहित्य में किया जाता है। आदर्शवाद जहाँ साहित्य और समाज की विद्रूपताओं, कुंठाओं तथा अवांछनीय तत्वों को समाज से दूर रखने का प्रयास करते हुए एक आदर्श समाज की स्थापना करने की चाह रखता है वहीं यथार्थवाद साहित्य और समाज की स्थिति का यथास्थिति चित्रण करता है। वस्तुतः आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों अपने आलोचनात्मक रुप में साहित्य और समाज को एक नई दिशा

देने का प्रयास करते हैं, चाहे वह अपनी दार्शनिक वैचारिकी में कितने भी अलग हों।

द्वितीय अध्याय–

इस अध्याय का शीर्षक **हिन्दी उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ के द्वंद्व का स्वरूप** है। इसके अंतर्गत उपन्यास के अर्थ, स्वरूप और प्रमुख परिभाषाओं पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् उपन्यास के विकास को व्याख्यायित करते हुए इस अध्याय को चार उप–अध्यायों में विभाजित किया गया है। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों का स्वरूप कभी आदर्शवादी तथा कभी यथार्थवादी रहा। कुछ विद्वानों ने इनमें से किसी एक धारा को पकड़ा तथा कुछ विद्वानों ने इसमें साम्य साधने का प्रयास किया।

उपन्यास शब्द 'उप+न्यास' से मिलकर बना है। जिसका अर्थ 'निकट रखी हुई वस्तु' या 'समीप रखना' है अर्थात् वह कृति या रचना जिसे पढ़कर लगे कि यह हमारे जीवन का प्रतिबिंब है जिसे हमारी ही भाषा में कहा गया है।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास मूलतः सुधारात्मक, ऐतिहासिक एवं मनोरंजनपरक हैं। जिसका मूल उद्देश्य या तो पाठक के मन को आनन्दित करना या फिर उसे किसी विषय पर उपदेश देना था। ऐसे उपन्यासों का यथार्थ जीवन से कम जुड़ाव था। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास तिलस्मी, जासूसी. और एय्यारी परक उपन्यास हैं जिनमें सर कटी लाश, बैताल पचीसी, चन्द्रकान्ता, आदि हैं। इनके लेखक क्रमशः गोपालराम गहमरी, लल्लूलाल, देवकीनन्दन खत्री हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की गई। जिसमें ऐतिहासिकता कम तथा ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से अपनी बातों को कहने की प्रवृत्ति ज्यादा दिखी। इन उपन्यासों का भी उद्देश्य अंततः मनोरंजन ही रहा। किशोरीलाल गोस्वामी का उपन्यास कानन कुसुम वा मस्तानी, मिश्र बन्धु की 'वीरमणि', ब्रजनन्दन सहाय की 'लालचीन' इत्यादि। हलांकि इस समय भी सामाजिक यथार्थ पर कुछ उपन्यास लिखे गए परन्तु इनका अंत भी सुखांत तथा लक्ष्य आदर्शवादी समाज की स्थापना करना था। ऐसे उपन्यासों में राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', भुवनेश्वर मिश्र का ''घराऊ घाट', ब्रजनन्दन

सहाय का 'सौन्दर्योपासक, प्रमुख है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों को आदर्शवादिता तथा मनोरंजन परक उपन्यासों की काया से बाहर लाने का श्रेय लज्जाराम मेहता, श्रद्धाराम फिल्लौरी, ब्रजनन्दन सहाय, किशोरीलाल गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह इत्यादि उपन्यासकारों को दिया जा सकता है जिन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का अंकन किया।

प्रेमचन्द के समय तक आते–आते हिन्दी उपन्यास आदर्श से यथार्थ की तरफ अपना रूख करने लगे थे। जिसका अधिकाधिक श्रेय प्रेमचन्द को जाता है। जिन्होंने अपनी संकल्पना आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से हिन्दी उपन्यासों की भूमि यथार्थवादी तो रखी परन्तु उनका गंतव्य हमेशा आदर्श की ओर जाना ही रहा। इनका उपन्यास सेवासदन वेश्वावृत्ति पर आधारित है। वेश्यावृति वर्तमान समय की सबसे विकट समस्याओं में से एक है। जिसका निराकरण इन्होंने इस उपन्यास में किया है।

निर्मला उपन्यास में दहेज की समस्या को उद्घाटित किया गया है। प्रेमाश्रम, रंगभूमि तथा गोदान में कृषक जीवन तथा पारिवारिक विघटन की समस्या को एक बढ़ते हुए क्रम में दिखाया गया है। प्रेमाश्रम उपन्यास में कृषक समस्या अपने आरम्भिक रूप में है तथा इसका अंत आदर्शोन्मुखता की तरफ है। वहीं गोदान उपन्यास को 'कृषक जीवन की त्रासदी की महागाथा' कहा जाता है तथा इस उपन्यास तक आते–आते प्रेमचन्द का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से नग्न यथार्थवादी हो जाता है। वस्तुतः यह दृष्टिकोण प्रेमचन्द का ही नहीं बल्कि उपन्यास के प्रौढ़ होने का भी द्योतक है। इनके समकालीन अन्य सामाजिक एवं यथार्थवादी, उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद सर्वप्रमुख हैं। जिनके उपन्यास तितली, कंकाल, इरावती (अपूर्ण) अपने समय की सामाजिक स्थिति का यथार्थवादी चित्रण करते हैं। इसके अतिरिक्त पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र', निराला, सियारामशरण गुप्त इत्यादि प्रमुख हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकार नई लीक के उपन्यासकार हैं जिन्होंने सिर्फ सामाजिक स्तर पर ही नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी उपन्यास लिखे हैं। प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय, डॉ. देवराज

हैं। जिन्होंने पात्रों के मनोवैज्ञानिक स्तर को उद्‌घाटित करते हुए उनकी यौन कुंठा इत्यादि को दशाया है। वस्तुतः पात्र की नैतिकता, आदर्श तथा सामाजिक दबाव और उसके मनोवैज्ञानिक यथार्थ के द्वंद्व की परिणति ही मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'अज्ञेय' की 'शेखर एक जीवनी है। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों में ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा, सामाजिक उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्‌ट, विष्णुप्रभाकर, राहुल सांकृत्यायन आदि हैं।

समकालीन उपन्यासों से तात्पर्य साठोत्तरी उपन्यासों से है जो आजादी तथा उसके बाद मोहभंग, एकाकीपन, पारिवारिक विघटन के परिवेश को लेकर आगे बढ़ते हैं। वस्तुतः समकालीन उपन्यासों में कई उपन्यास यथार्थ की भूमि पर सृजित हुए हैं। ऐसे उपन्यासो में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' जो आदर्शवादी प्रेम के शुरू होने से एक यर्थाथवादी अंत की कथा कहता है। इसके अतिरिक्त अन्य समकालीन उपन्यासकारों में सुरेन्द्र वर्मा, निर्मल वर्मा, नरेश मेहता, राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, भीष्म साहनी, यशपाल इत्यादि ने प्रगतिशील चेतना के साथ या तो साहित्य और समाज को यथार्थ के धरातल पर रखने का प्रयास किया या फिर मध्यवर्गीय परिवार के एकाकीपन, दुःखों, कुंठाओं को दर्शाने का प्रयास किया।

तृतीय अध्याय :

इस अध्याय का शीर्षक **वर्तमान विमर्शों के संदर्भ में 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व** है। इस अध्याय के अंतर्गत वर्तमान समय की रचना प्रक्रिया में अग्रणी भूमिका निभा रहें विमर्शों के आलोक में 21वीं सदी के चयनित उपन्यासों का अध्ययन किया गया है। जिसमें मुख्य रूप से स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, LGBTQ+ आदि विमर्शों को विश्लेषण का केन्द्र बनाया गया है। 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासकार अपनी रचनाओं में की जाने वाली अपेक्षाओं, महाकाव्यात्मकता, समाज के प्रति जिम्मेदारी से भली भाँति परिचित हैं और इसके प्रति जागरुक भी हैं। इस सदी के उपन्यास अब अपने काल्पनिक और यथार्थ युग से बाहर आकर यथार्थ को अपनी आधारभूमि बना चुके है। जिसमें

पात्र अपने आस–पास की घट रही घटनाओं से प्रभावित हो रहा है तथा अपने क्रियाकलापों से समाज को प्रभावित भी कर रहा है। हालांकि पात्रों के मन के आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व समानांतर रूप से चलता आ रहा है।

21वीं सदी का स्त्री जीवन पुरुष, बाजार व शोषणकारी सत्ता के त्रिकोण में फंसा है। जहाँ आदर्शात्मक रूप में आधुनिक शिक्षा, भूमण्डलीकरण और उपभोक्तावाद ने समाज में सभी वर्गों के लिए आगे जाने के रास्ते खोल दिए हैं। जिससे स्त्रियों की स्थिति आर्थिक रूप से सशक्त हुई है। स्त्रियाँ भी परिवार, समाज तथा राजनीति में सशक्त रूप से अपनी भागीदारी प्रस्तुत कर रहीं है। वहीं अगर यथार्थ रूप में देखा जाय तो बाजार के बढ़ते प्रभाव ने स्त्रियों को वस्तु (object) के रूप में देखा है। बाजारवाद स्त्री अस्मिता को नग्नता और Product के रूप में इस्तेमाल कर रहा है। वस्तुतः 21वीं सदी की महिलाएँ ''कामकाजी महिलाएं है जो घरेलू कामों से लेकर बड़े–बड़े कारखानों, सिनेमा व कंपनियों की मालिक हैं परन्तु शोषणकारी सत्ता यहाँ भी इनका शोषण करने में पीछे नहीं हैं। अपने काम के साथ–साथ अपनी अस्मिता को बचाना भी इनके लिए चुनौती है। दलित शब्द किसी एक विशेष जाति को इंगित न करके एक वर्ग को इंगित करता है जिसमें तथाकथित नीची निम्न जातियाँ ही नहीं बल्कि वह सभी वर्ग या मनुष्य आाते हैं जिनका अपने समय के शोषणकारी सत्ता द्वारा शोषण किया गया है और साथ ही वैश्वीकरण और बाजारवाद की इस उभरती हुई प्रक्रिया में दलितों के लिए अवसर को पूरी तरह से समाप्त किया है क्योंकि बाजारवादी व्यवस्या हाशिये पर धकेल रही है। 21वीं सदी के उपन्यास इस प्रक्रिया को समझने में पूरी तरह से सक्षम है।

21वीं सदी में आदिवासी संस्कृति अपने समय से सबसे ज्यादा प्रभावित तथा सर्वाधिक संकटापन्न संस्कृतियों में से एक है। आधुनिक विकास के कारण कई ऐसी वर्चस्ववादी सत्ता का विकास हुआ है जो अपने भीतर कई छोटी संस्तुतियों को समाहित कर उनका अस्तित्व खत्म कर रही है। आदिवासियों के विलुप्त होते गाँव और विस्थापन की समस्याएँ प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। जिसका प्रमुख कारण विस्थापन तथा संसाधनों की खोज के लिए किए गए उत्खनन और नए उद्योगों की स्थापना है।

21वीं सदी के आदिवासी उपन्यास रणेन्द्र का ग्लोबल गाँव का देवता और गायब होता देश, महुआ माजी का मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ आदिवासियों की समस्याओं को उजागर करने में सफल हुए हैं। उपरोक्त विमर्शों के साथ–साथ 21वीं सदी के उपन्यासों में कुछ अन्य विमर्शों को जन्म दिया। जिसमें थर्ड जेंडर विमर्श सर्वप्रमुख हैं। थर्ड जेंडर के सामाजिक स्वीकार्यता की बात की जाए तो तमाम कानूनी अधिकारों के बाद भी इन्हें वह सामाजिक स्वीकार्यता नहीं मिली जिसका अधिकार वे रखते हैं। चित्रा मुदगल पोस्ट बॉक्स नं० 203 नालासोपारा कथा के पात्र बिन्नी (विनोद) और उसके माँ के बीच आपसी पत्राचार द्वारा किए गए वार्तालाप पर आधारित है। वस्तुतः इस उपन्यास में अपने ही परिवार द्वारा एक थर्ड जेंडर बच्चे से किए गए दुर्व्यवहार तथा इससे बच्चे पर पड़ने वाली मानसिक पीड़ा को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में चित्रा मुदगल व्यवस्था से लेकर व्यक्ति सामाजिक कार्यकर्ताओं, राजनीतिकार सभी पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करती है। इसके अतिरिक्त महेन्द्र भीष्म का उपन्यास किन्नर कथा निर्मला भुराड़िया का उपन्यास गुलाम मंडी, प्रदीप सौरभ का उपन्यास तीसरी ताली। 21वीं सदी के प्रमुख थर्ड जेंडर पर आधारित उपन्यास हैं।

चतुर्थ अध्याय :

इस अध्याय का शीर्षक **21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ की अभिव्यक्तियां** है। इस अध्याय के अंतर्गत भूमण्डलीकरण, राजनीतिक, सांस्कृतिक चेतना, विस्थापन, किसान जीवन, आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोग इत्यादि पर बात की गई है।

भूमण्डलीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने विश्व के सभी देशों को साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर एक दूसरे के साथ जोड़ दिया है। पश्चिमी सभ्यता की अच्छाइयों के साथ उनकी अनिवार्य बुराइयों ने समान एवं साहित्य को गहरे स्तर तक प्रभावित किया है। वर्चस्ववादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से व्यक्ति लगातार अपनी सांस्कृतिक जड़ो से कटता जा रहा है। अपने पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों से अलग होता जा रहा है। हम अपने संबंधी, अपने घरों

तथा अपने परिजनों से अलग होकर अकेलेपन की तरफ प्रस्थान करते जा रहे हैं। दरअसल, यह प्रस्थान अपनी जड़ों से प्रस्थान नहीं है बल्कि यह अमानवीयता की तरफ प्रस्थान है।

21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास वर्चस्ववादी संस्कृति के इस प्रकरण को सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं। सांस्कृतिक विस्थापन, भोगवादी संस्कृति इन उपन्यासों के अनिवार्य तत्व हैं। भूमण्डलीकरण तथा बाजारवादी संस्कृति की वास्तविकता पर लिखा गया 'काशीनाथ सिंह' का 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास 21वीं सदी की मध्यवर्गीय संरचना के विखण्डन का महाकाव्य है। प्रस्तुत उपन्यास में रघुनाथ ने स्वयं को मानवीय मूल्यों, संस्कारों तथा विस्थापित होती संस्कृतियों के रेहन पर रख दिया है। इसके बाद भी वह इस बाजारवादी संस्कृति में अकेले ही खड़ा है। यह उपन्यास वास्तविकताओं, चरित्रों के मध्यवर्गीय परिवार की सच्चाई और उसके विखण्डन के पीछे खड़ी यथार्थ दार्शनिकता का विश्लेषण करता है। सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर 21वीं सदी के उपन्यास अपने समकालीन समय का समकालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करते हैं। 'महुआ माजी का 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास नाभिकीय विकिरण के प्रदूषण से प्रभावित आदिवासी समाज की समस्याओं को लेकर लिखा गया है। इन समस्याओं के समानान्तर उपन्यास में उपस्थित आदिवासी समाज के रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाजों इत्यादि का भी चित्रण इस उपन्यास में बखूबी किया गया है। इस उपन्यास के राजनैतिक पक्ष की बात की जाय तो इसमें आदिवासियों द्वारा किए गए यूरेनियम विरोधी आंदोलन, वन अधिकार कानून इत्यादि का जिक्र किया गया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। भारतीय समाज की एक बहुत बड़ी आबादी कृषि को अपने जीविकोपार्जन का आधार बनाए हुए है फिर भी किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में कोई सकारात्मक परिवर्तन दिखाई नहीं देता है। हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन की स्थितियों को लेकर उपन्यास लिखे गए हैं। 'गोदान' कृषक जीवन पर लिखे गए उपन्यासों में अग्रणी है। 21वीं सदी के उपन्यासों में किसान जीवन तथा किसान आत्महत्या पर लिखा गया 'संजीव' का उपन्यास 'फाँस' गोदान की अगली कड़ी के रूप में दिखाई देता है।

वस्तुतः कर्ज में डूबे होरी की अंतिम परिणति उसे मृत्यु तक ले जाती है परंतु उसकी मृत्यु आत्महत्या से नहीं होती। फाँस उपन्यास के किसान की अंतिम परिणति आत्महत्या होती है। यह घटना 21वीं सदी में किसानों की गिरती हुई स्थिति को दर्शाता है। यह उपन्यास कृषक जीवन की समस्याओं को गहरी संवेदना के साथ दर्शाता है तथा तथ्यों पर बात करते हुए किसानों की लगातार गिरती स्थितियों का एक संवेदनात्मक आंकड़ा प्रस्तुत करता है। गोदान से लेकर फाँस तक के सफर में किसानों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति में लगातार गिरावट हुई है। आदर्शात्मक रूप में सरकार द्वारा कितनी भी योजनाएँ लायी गई हों, कर्ज माफ किए गए हों परन्तु यथार्थ रूप में देखा जाए तो किसानों की स्थिति बद से बदतर ही होती जा रही है। 'रह गई दिशाएँ इसी पार' विज्ञान तथा मनुष्य के अंतर्संबंधों को दर्शाता हुआ संजीव का एक शोधपूर्ण उपन्यास हैं। यह उपन्यास वर्तमान समय की सामाजिक स्थिति, जरूरी वैज्ञानिक विमर्श, बलात्कार की समस्या इत्यादि विषयों पर तथ्यपरक बात करता है।

पंचम अध्याय–

इस अध्याय का शीर्षक **21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों का संरचनागत वैशिष्ट्य** है। इसके अंतर्गत 21वीं सदी के उपन्यासों में प्रयुक्त उपन्यासों की कथा भाषा, उनमें प्रयोग किए गए बिम्ब एवं प्रतीक तथा उपन्यासों की विभिन्न शैलियों पर प्रकाश डाला गया है। 21वीं सदी व्यापक सांस्कृतिक बदलाव की सदी है। भूमण्डलीकरण और संचार क्रान्ति ने समाज एवं संस्कृति को एक साथ लाने के साथ ही विभिन्न भाषाओं को भी एक दूसरे के साथ खड़ा किया है तथा उनके सहज प्रयोग पर बल दिया है। 21वीं सदी के उपन्यासों में प्रयुक्त कथा भाषा का वाक्य–विन्यास अत्यन्त सरल, सहज एवं प्रभावी है। बोधगम्यता की दृष्टि से इनमें उपन्यास के परिवेश उनके, सांस्कृतिक स्वरूप आदि को ध्यान में रखा गया है। उपन्यासों में संवाद को छोटा एवं सटीक रखा गया है। क्षेत्रीयता को दिखाने के लिए तथा उपन्यास को ग्रामीण परिवेश से जोड़ने के लिए, वहाँ के लोक गायन आदि को भी दर्शाया गया है। भाषा की व्यंग्यात्मकता को समाज तथा राजनीति पर

कटाक्ष करने के लिए प्रयोग किया गया है। उपन्यासों में देशज भाषा, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, तुर्की, तत्सम् एवं तद्भव के शब्दों का प्रयोग भी बड़ी सहजता से दिख जाता है। इसके अतिरिक्त भाषा की यथार्थता को बनाए रखने के लिए गालियों का प्रयोग, मुहावरों का प्रयोग तथा भाषा की ध्वन्यात्मकता का भी विशेष ध्यान रखा गया है।

21 वीं सदी के उपन्यासों में प्रतीकों एवं बिम्बों का भी प्रयोग किया गया है। प्रतीक, भाषा की समाहारता को बढ़ातें हैं। यह कथा भाषा को अलंकारिकता प्रदान करतें हैं। प्रतीकों का प्रयोग किसी अप्रस्तुत चीज को इंगित करने के लिए किया जाता है। 21वीं सदी के उपन्यास प्रतीकों के लिहाज से काफी समर्थ रहें हैं। प्रतीकों के माध्यम से उपन्यासकारों ने अपने मनोभावों को व्यक्त किया है। उदाहरणस्वरूप 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के शीर्षक में 'देवता' प्रतीक का प्रयोग शोषणकारी सत्ता के रूप में विद्यमान बड़ी–बड़ी मल्टीनेशनल कंपनियों के लिए किया गया है। इसी प्रकार 'गायब होता देश' उपन्यास में 'देश' अपने प्रतीकात्मक रूप में आदिवासी समाज की गायब होती संस्कृति का द्योतक है।

शैलीगत दृष्टि से 21वीं सदी के उपन्यासों में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इस सदी के उपन्यासों को प्रभावी और सटीक बनाने के लिए उपन्यासकारों ने विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नम्बर 203 नाला सोपारा' में मुख्यतः 'पत्रात्मक शैली' एवं 'भावात्मक शैली' का प्रयोग किया गया है। 'रणेन्द्र के उपन्यास 'गायब होता देश' में प्रमुख रूप से 'डायरी शैली और वर्णनात्मक शैली तथा कहीं–कहीं 'आत्मकथात्मक शैली' (मैं शैली) का प्रयोग किया गया है।

उपसंहार के रूप में 21वीं सदी के उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ की द्वन्द्वात्मक स्थितियों को वैचारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। 21वीं सदी के उपन्यास विभिन्न विमर्शों तथा भूमण्डलीकरण, बाजारवाद, विस्थापन की समस्या से जूझ रहे मनुष्य की आंतरिक और बाह्य स्थितियों को दर्शाने में पूर्णतः सफल रहें। इस सदी के उपन्यास समाज

के सभी वर्गों को एक सकारात्मक उद्देश्य देने तथा अपने समय की यथार्थ स्थितियों से रूबरू कराने में पूर्णतः सफल हुए हैं। इसके साथ ही इस सदी के उपन्यास आदर्श और यथार्थ के बीच परस्पर सामन्जस्य बिठाते हुए समाज को सही दिशा दिखाने में सफल हुए हैं।